ॐ

गङ्गालहरी

(१)

समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधायाः किमपि तन्-
महैश्वर्यं लीलाजनितजगतः खण्डपरशोः ।
श्रुतीनां सर्वस्वं सुकृतमथ मूर्तं सुमनसां
सुधासौन्दर्यं ते सलिलमशिवं नः शमयतु ॥

माँ ! जो सम्पूर्ण पृथ्वीका महान् सौभाग्यरूप है, जो अनायास ही सम्पूर्ण विश्वको उत्पन्न करनेवाले शिवका भी परम ऐश्वर्यरूप है, जो श्रुतियोंका सर्वस्व है तथा देवताओंका मूर्तिमान् पुण्यरूप है, वह अमृतके सौन्दर्य-का साररूप तुम्हारा जल हमारे अमङ्गलोंको दूर करे ॥

(२)

दरिद्राणां दैन्यं दुरितमथ दुर्वासनहृदां
द्रुतं दूरीकुर्वन् सकृदुपगतो दृष्टिसरणिं ।

अपि द्रागाविद्याद्रुमदलनदीक्षागुरुरिह
प्रवाहस्ते वारां श्रियमयमपारां दिशतु नः ॥

गङ्गे ! एक बार भी दृष्टिगोचर होनेपर जो दरिद्रोंका दारिद्रय तथा पापियोंके पापको अतिशीघ्र नष्ट कर देता है और इस लोकमें अज्ञानरूप वृक्षका सब ओरसे शीघ्र नाश करनेके लिये दीक्षागुरुके समान है, वह तुम्हारा जलप्रवाह हमें अपार ऐश्वर्य प्रदान करे ॥

(३)

उदञ्चन्मात्सर्यस्फुटकपटहेरम्बजननी-
कटाक्षव्याक्षेपक्षणजनितसंक्षोभनिवहाः ।
भवन्तु त्वङ्गन्तो हरशिरसि गाङ्गाः पुनरमी
तरङ्गाः प्रोत्तुङ्गा दुरितभर भङ्गाय भजताम् ॥

पापनाशिनी गङ्गे ! बढ़ती हुई ईर्ष्या तथा स्पष्ट कपटसे युक्त गणेशजननी पार्वतीके कटाक्षपूर्वक देखते समय उत्पन्न तुम्हारा क्षोभसमूहरूप ये शिवजीके मस्तकपर उछलती हुई उत्ताल तरङ्गें भक्तोंके पापसमूहका विध्वंस करें ॥

(४)

स्मृतिं याता पुंसामकृतसुकृतानामपि च या
हरन्त्यन्तस्तन्द्रां तिमिरमिव चन्द्रांशुसरणिः ।
इयं सा ते मूर्तिः सकलसुरसंसेव्यसलिला
ममान्तःसंतापं त्रिविधमथ तापं च हरताम् ॥

अम्ब ! जिन्होंने कभी कोई पुण्य नहीं किया है, वे भी यदि तुम्हारा स्मरण करते हैं तो तुम उनके हृदयके तमोगुणको वैसे ही नष्ट कर देती हो, जैसे चन्द्रमाकी किरणें अन्धकारको नष्ट कर देती हैं । माँ ! सम्पूर्ण देवता जिसके पवित्र जलका सेवन करते हैं, वह तुम्हारी यह जलमयी मूर्ति मेरे आधिभौतिक आदि तीनों तापोंका तथा मनके संतापका विनाश करे ।

(५)

तवालम्बादम्ब स्फुरदलघुगर्वेण सहसा
मया सर्वेऽवज्ञासरणिमथ नीताः सुरगणाः ।
इदानीमौदास्यं यदि भजसि भागीरथि तदा
निराधारो हा रोदिमि कथय केषामिह पुरः ॥

भगीरथनन्दिनि ! मैंने (एकमात्र) तुम्हारा ही आश्रय ग्रहण करके (तुम्हारे ही बलपर) अत्यन्त अभिमानमें भरकर सभी देवताओंकी उपेक्षा कर दी। माँ ! अब यदि तुम मेरी उपेक्षा करती हो तो बताओ, मैं किनके आगे जाकर रोऊँ, अब मेरा कौन आधार है? ॥

(६)

अपि प्राज्यं राज्यं तृणमिव परित्यज्य सहसा
विलोलद्वानीरं तव जननि तीरं श्रितवताम् ।
सुधातः स्वादीयः सलिलमिदमातृप्ति पिबतां
जनानामानन्दः परिहसति निर्वाणपदवीम् ॥

माता ! जिन्होंने अपने विशाल साम्राज्यको भी तिनके-के समान ठुकराकर लहलहाते हुए (हरे-भरे) बेंत आदि वृक्षोंसे युक्त तुम्हारे तीरका आश्रय लिया है, जो अमृतसे भी अधिक स्वादिष्ट तुम्हारे इस जलको भरपेट पीते हैं, उनका वह आनन्द मोक्षसुखका भी परिहास करता है (अर्थात् वे उस आनन्दको छोड़कर मोक्ष भी नहीं चाहते)॥

(७)

प्रभाते स्नान्तीनां नृपतिरमणीनां कुचतटीं
गतो यावन्मातर्मिलति तव तोयैर्मृगमदः ।
मृगास्तावद् वैमानिकशतसहस्रैः परिवृता
विशन्ति स्वच्छन्दं विमलवपुषो नन्दनवनम् ॥

माँ ! प्रातःकाल स्नान करती हुई राजरमणियोंके वक्षःस्थलपर लगा हुआ मृगमद (कस्तूरी) का लेप ज्यों ही तुम्हारे जलमें मिलता है; उसी क्षण वे मृग (जिनकी नाभिसे वह कस्तूरी निकली थी) दिव्य शरीर धारण कर लाखों विमानारूढ़ देवताओंसे घिरे हुए स्वतन्त्रतापूर्वक नन्दनवनमें प्रवेश करते हैं ॥

(८)

स्मृतं सद्यः स्वान्तं विरचयति शान्तं सकृदपि
प्रगीतं यत्पापं झटिति भवतापं च हरति ।
इदं तद् गङ्गेति श्रवणरमणीयं खलु पदं
मम प्राणप्रान्ते वदनकमलान्तर्विलसतु ॥

मैया ! जो स्मरण करनेमात्रसे तत्काल मनमें शान्ति प्रदान करता है तथा एक बार भी प्रेमपूर्वक गान करनेसे प्राणियोंके सभी पाप तथा जन्म-मरणके दुःखको दूर कर देता है, वह कानको सुख देनेवाला तुम्हारा यह 'गङ्गा' नाम अन्तसमय मेरे मुखकमलमें विराजमान हो ॥

(९)

यदन्तः खेलन्तो बहुलतरसंतोषभरिता
न काका नाकाधीश्वरनगरसाकाङ्क्षमनसः ।
निवासाल्लोकानां जनिमरणशोकापहरणं
तदेतत्ते तीरं श्रमशमनधीरं भवतु नः ॥

माँ ! जिस तटपर खेलते हुए कौए भी पूर्ण संतोषका अनुभव करते हैं और उसके सामने वे इन्द्रपुरी (अमरावती) की भी कामना नहीं करते तथा जहाँ निवास करनेसे प्राणियोंका जन्म-मरणरूप महान् शोक (सदाके लिये) दूर हो जाता है, वह तुम्हारा यह तीर हमारे जन्म-मरणरूप श्रमको (सदाके लिये) मिटा दे ॥

(१०)

न यत् साक्षाद् वेदैरपि गलितभेदैरवसितं
न यस्मिञ्जीवानां प्रसरति मनोवागवसरः ।
निराकारं नित्यं निजमहिमनिर्वासिततमो
विशुद्धं यत्तत्त्वं सुरतटिनि तत्त्वं न विषयः ॥

देवगङ्गे ! जिस तत्त्वका भेदको मिटा देनेवाले (अभेदका प्रतिपादन करनेवाले) वेद भी साक्षात् रूप-से पता नहीं लगा सके (नेति नेति कहकर निषेधमुखसे ही निरूपण करते हैं), जहाँ जीवोंकी वाणी तो क्या, मन भी नहीं पहुँचता, जो अपने प्रकाशसे ही संसारके समस्त (अज्ञानरूप) अन्धकारको दूर कर देता है, तुम (वही) निराकार (ज्योतिःस्वरूप) विशुद्ध (मायासे अस्पृष्ट) शाश्वत द्रष्टारूप ब्रह्मतत्त्व हो, दृश्यरूप कदापि नहीं ॥

(११)

महादानैर्ध्यानैर्बहुविधवितानैरपि च यन्-
न लभ्यं घोराभिः सुविमलतपोराशिभिरपि ।

अचिन्त्यं तद्विष्णोः पदमखिलसाधारणतया
दधाना केनासि त्वमिह तुलनीया कथय नः ॥

हे परमोदारचरिते ! जो भगवान् विष्णुका अचिन्त्य परमधाम (वैकुण्ठ) बड़े-बड़े दानों, ध्यानों तथा अनेक प्रकारके यज्ञों एवं उग्र निर्मल तपस्याओं-द्वारा भी नहीं प्राप्त हो सकता, वही पद तुम सबको समानरूपसे (भेदभाव छोड़कर) प्रदान करती हो। (तब) तुम्हीं कहो, विश्वमें दूसरा ऐसा कौन है, जिससे तुम्हारी मैं तुलना करूँ ?

(१२)

नृणामीक्षामात्रादपि परिहरन्त्या भवभयं
शिवायास्ते मूर्तेः क इह बहुमानं निगदतु ।
अमर्षम्लानायाः परममनुरोधं गिरिभुवो
विहाय श्रीकण्ठः शिरसि नियतं धारयति याम्॥

अम्ब ! दृष्टिमात्रसे ही मनुष्योंके जन्म-मृत्युरूप भयको सर्वथा दूर करनेवाली तुम्हारी इस मङ्गलमयी मूर्तिकी कौन बड़ाई कर सकता है, जिसे ईर्ष्यासे सदा म्लान (उदास)

रहनेवाली हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीको भी अत्यधिक मनाना छोड़कर महादेवजी सदा अपने मस्तकपर धारण करते हैं।

(१३)

विनिन्द्यान्युन्मत्तैरपि च परिहार्याणि पतितै-
रवाच्यानि व्रात्यैः सपुलकमपास्यानि पिशुनैः।
हरन्ती लोकानामनवरतमेनांसि कियतां
कदाप्यश्रान्ता त्वं जगति पुनरेका विजयसे॥

पतितपावनि ! जिन्हें पागल भी धिक्कार देते हैं, पतित पुरुष भी जिनसे दूर रहते हैं, संस्कारच्युत—जातिहीन व्यक्ति भी जिनका नामतक नहीं लेते, जिनकी चर्चा सुनकर दुष्ट पुरुषोंके भी रोंगटे खड़े हो जाते और वे भी जिनका परित्याग कर देते हैं, कितने (अनगिनत) लोगोंके ऐसे-ऐसे (घृणित) पापोंका निरन्तर तुम नाश करती रहती हो, परंतु कभी श्रान्त नहीं होती। अम्ब ! (इस दृष्टिसे) जगत्‌में तुम निराली हो (दूसरा कोई तुम्हारी समता नहीं कर सकता)।

(१४)

स्खलन्ती स्वर्लोकादवनितलशोकापहतये
जटाजूटग्रन्थौ यदसि विनिबद्धा पुरभिदा ।
अये निर्लोभानामपि मनसि लोभं जनयतां
गुणानामेवायं तव जननि दोषः परिणतः ॥

भूलोकके शोकको दूर करनेके लिये जब तुम स्वर्ग-लोकसे उतरने लगी, तब त्रिपुरारि शंकरने (बीचमें ही) तुम्हें अपनी जटाओंके जूड़ेमें समेट लिया (बाँध लिया)। माँ ! तुम्हारे गुणोंका ही यह दोष प्रकट हुआ है, जो निर्लोभी महात्माओंके मनमें भी लोभ उत्पन्न कर देते हैं ॥

(१५)

जडानन्धान् पङ्गून् प्रकृतिबधिरानुक्तिविकलान्
ग्रहग्रस्तानस्ताखिलदुरितनिस्तारसरणीन् ।
निलिम्पैर्निर्मुक्तानपि च निरयान्तर्निपततो
नरानम्ब त्रातुं त्वमिह परमं भेषजमसि ॥

जननि ! जो विवेकरहित हैं, जो अंधे हैं, जो पङ्गु हैं, जो जन्मसे ही बहरे हैं, जो गूँगे हैं, जिनमें किसी

भूत-प्रेतका आवेश हो गया है, जिनके पापोंसे छुटकारेके सभी मार्ग रुक गये हैं, देवताओंने भी जिनका (सदाके लिये) परित्याग कर दिया है और जो नरकमें गिरने जा रहे हैं—ऐसे-ऐसे (पतित) प्राणियोंकी रक्षा करनेके लिये तुम इस जगत्में परम औषधरूप हो ।

(१६)

स्वभावस्वच्छानां सहजशिशिराणामयमपा-
मपारस्ते मातर्जयति महिमा कोऽपि जगति।
मुदा यं गायन्ति द्युतलमनवद्यद्युतिभृतः
समासाद्याद्यापि स्फुटपुलकसान्द्राः सगरजाः॥

माँ ! संसारमें तुम्हारे स्वभावतः शीतल तथा निर्मल जलकी जगत्में यह अपार एवं अनिर्वचनीय महिमा सबसे ऊपर है, जिसका गान स्वर्ग प्राप्त करनेके बाद आज भी दिव्य कान्तिधारी सगरके पुत्र बड़ी प्रसन्नतासे करते रहते हैं और उस समय उनके (सम्पूर्ण) शरीरमें घना रोमाञ्च हो आता है, जिसके कारण वे फूले-फूले लगते हैं ।

(१७)

कृतक्षुद्राघौघानथ झटिति संतप्तमनसः
समुद्धर्तुं सन्ति त्रिभुवनतले तीर्थनिवहाः।
अपि प्रायश्चित्तप्रसरणपथातीतचरितान्
नरानूरीकर्तुं त्वमिव जननि त्वं विजयसे ॥

गङ्गा मैया ! छोटे-छोटे पापसमूहका आचरण करके तुरंत ही पश्चात्तापसे पीडित प्राणियोंका शीघ्रतासे उद्धार करनेवाले तो त्रिभुवनमें बहुत तीर्थ हैं; परंतु जिनका कोई प्रायश्चित्त भी नहीं हो सकता, ऐसे-ऐसे पाप करनेवाले पतितोंको अपनानेवाली तो केवल तुम्हीं सर्वोपरि समर्थ हो, दूसरा कोई नहीं ।

(१८)

निधानं धर्माणां किमपि च विधानं नवमुदां
प्रधानं तीर्थानाममलपरिधानं त्रिजगतः ।
समाधानं बुद्धेरथ खलु तिरोधानमधियां
श्रियामाधानं नः परिहरतु तापं तव वपुः ॥

गङ्गे ! तुम सभी धर्मोंकी निधि हो, तीर्थोंमें प्रधान हो

त्रिलोकीका निर्मल परिधानीय वस्त्र (साड़ी) स्वरूप हो (साड़ीकी तरह तुमने त्रिलोकीको आवृत कर रखा है), नये-नये आनन्दोंका सृजन करनेवाली हो, बुद्धिवादियोंके हृदयको भी शान्ति देनेवाली तथा अविवेकियोंसे गुप्त रहनेवाली हो । माँ ! तुम्हारा यह सुख-सौभाग्यको देनेवाला (जलमय) शरीर हमारे सभी तापोंको दूर करे।

(१९)

पुरो धावं धावं द्रविणमदिराघूर्णितदृशां
महीपानां नानातरुणतरखेदस्य नियतम् ।
ममैवायं मन्तुः स्वहितशतहन्तुर्जडधियो
वियोगस्ते मातर्यदिह करुणातः क्षणमपि ॥

मैया ! इस जीवनमें तुम्हारी दयाके साथ मेरा सम्बन्ध यदि क्षणभरके लिये भी छूटा है तो वह मेरा ही अपराध है; क्योंकि मैं जडमति अपने सैकड़ों स्वार्थोंका नाश करके सदा ही उन महीपोंके आगे, जिनके नेत्र धनके नशेसे घूमते रहते हैं, दौड़ता रहकर नाना प्रकारके नये-नये श्रम एवं दुःखका अनुभव करता रहा हूँ ।

(२०)

मरुल्लीलालोलल्लहरिलुलिताम्भोजपटल-
स्खलत्पांसुव्रातच्छुरणविसरत्कौङ्कुमरुचि ।
सुरस्त्रीवक्षोजक्षरदगरुजम्बालजटिलं
जलं ते जम्बालं मम जननजालं जरयतु ॥

हवाके झकोरोंसे उत्पन्न तरल-तरङ्गोंके द्वारा कम्पित कमलसमूहोंसे झड़ते हुए पराग समूहोंके कारण केसरके समान रंगवाला तथा देवाङ्गनाओंके वक्षःस्थलसे धुलकर बहते हुए सुगन्धित अगरुके कीचड़से घनीभूत एवं तीव्र गतिसे बहनेवाला तुम्हारा दिव्य जल मेरे पुनर्जन्मोंकी परम्पराको भङ्ग करे ।

(२१)

समुत्पत्तिः पद्मारमणपदपद्मामलनखा-
न्निवासः कन्दर्पप्रतिभटजटाजूटभवने ।
अथायं व्यासङ्गो हतपतितनिस्तारणविधौ
न कस्मादुत्कर्षस्तव जननि जागर्ति जगति ॥

माँ ! लक्ष्मीकान्त भगवान् त्रिविक्रमके चरणकमलोंके

निर्मल नखसे तो तुम्हारी उत्पत्ति हुई है, कामदेवके गर्वको चूर-चूर करनेवाले भगवान् शंकरके जटाजूटरूपी भवनमें तुम्हारा निवास है और दीन-हीन पतितोंका उद्धार करनेमें तुम्हारी बढ़ी हुई आसक्ति (अनुराग) है, माँ! फिर सम्पूर्ण जगत्में किससे बढ़कर तुम्हारी महिमा नहीं होगी ? ॥

(२२)

नगेभ्यो यान्तीनां कथय तटिनीनां कतमया
पुराणां संहर्तुः सुरधुनि कपर्दोऽधिरुरुहे ।
कया वा श्रीभर्तुः पदकमलमक्षालि सलिलै-
स्तुलालेशो यस्यां तव जननि दीयेत कविभिः ॥

माँ गङ्गे ! (हिमालय आदि) पर्वतोंसे नदियाँ तो बहुत-सी निकली हैं, परंतु तुम्हीं कहो, उनमेंसे किसने त्रिपुरारि शंकरके जटाजूटपर (विराजमान होनेका) अधिकार पाया और किसने अपने जलसे लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके चरण धोनेका सौभाग्य प्राप्त किया, जिसके साथ कविजन तुम्हारी थोड़ी भी तुलना कर सकें ? ॥

(२३)

विधत्तां निःशङ्कं निरवधिसमाधिं विधिरहो
सुखं शेषे शेतां हरिरविरतं नृत्यतु हरः।
कृतैः प्रायश्चित्तैरलमथ तपोदानयजनैः
सवित्री कामानां यदि जगति जागर्ति भवती॥

माँ! जब (सम्पूर्ण) अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली तुम संसारमें बनी हो, तब यज्ञ, दान, तपस्या एवं (विविध) प्रायश्चित्त करनेकी क्या आवश्यकता है? तबतक ब्रह्मा निश्चिन्त होकर अवधिरहित समाधि लगायें, भगवान् विष्णु सुखपूर्वक शेषनागपर शयन करें, शंकर भी बिना विश्राम किये अपने ताण्डव नृत्यमें लगे रहें (किसीकी कोई आवश्यकता नहीं है)॥

(२४)

अनाथः स्नेहार्द्रां विगलितगतिः पुण्यगतिदां
पतन् विश्वोद्धर्त्रीं गदविगलितः सिद्धभिषजम्।
सुधासिन्धुं तृष्णाकुलितहृदयो मातरमयं
शिशुः सम्प्राप्तस्त्वामहमिह विदध्याः समुचितम्॥

शरणागतवत्सले ! मैं अनाथ हूँ, तुम स्नेहसे भीगी रहती हो, मैं गतिहीन (असहाय) हूँ, तुम (पापियोंको भी) पुण्यात्माओंकी गति देनेवाली हो, मैं (पापपङ्कमें) गिरता जा रहा हूँ, तुम सम्पूर्ण विश्वका उद्धार करनेवाली हो, मैं रोगोंसे जर्जर हो गया हूँ, तुम सिद्ध वैद्य हो, तुम सुधासिन्धु हो, मैं तृष्णासे पीड़ित हृदयवाला हूँ, माँ ! यह नन्हा-सा बालक मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ, अब तुम मेरे लिये जो उचित हो, वही करो ॥

(२५)

विलीनो वै वैवस्वतनगरकोलाहलभरो
गता दूता दूरं क्वचिदपि परेतान् मृगयितुम् ।
विमानानां व्रातो विदलयति वीथीर्दिविषदां
कथा ते कल्याणी यदवधि महीमण्डलमगात् ॥

गङ्गा मैया ! जबसे तुम्हारी मङ्गलमयी चर्चा इस भू-मण्डलपर पहुँची है, तबसे यमपुरी (संयमनी) का आर्तनाद सर्वथा बंद हो गया, यमदूत भी मृत व्यक्तियोंको खोजनेके

लिये कहीं बहुत दूर चले गये अर्थात् नरकमें ले जानेके लिये उन्हें कोई नहीं मिला तथा देवताओंकी (स्वर्गकी) गलियोंको तुम्हारी कृपासे स्वर्गारोहण करनेवालोंके झुंड-के-झुंड विमान विदीर्ण करने लगे ॥

(२६)

स्फुरत्कामक्रोधप्रबलतरसंजातजटिल-
ज्वरज्वालाजालज्वलितवपुषां नः प्रतिदिनम् ।
हरन्तां संतापं कमपि मरुदुल्लासिलहरि-
च्छटाचञ्चत्पाथःकणसरणयो दिव्यसरितः ॥

उद्दीप्त काम और क्रोधसे अत्यन्त प्रबल रूपमें उत्पन्न तीव्र ज्वरकी ज्वालाके समूहसे दिन-दिन हमारा शरीर जल रहा है और उससे हमें अवर्णनीय व्यथा हो रही है । उसे वायुके वेगसे उल्लसित तरङ्गोंके कारण उछलते हुए दिव्य नदी श्रीगङ्गाजीके जलकी फुहारोंका समूह शान्त करे ॥

(२७)

इदं हि ब्रह्माण्डं सकलभुवनाभोगभवनं
तरङ्गैर्यस्यान्तर्लुठति परितस्तिन्दुकमिव ।

स एव श्रीकण्ठप्रविततजटाजूटजटिलो
जलानां संघातस्तव जननि तापं हरतु नः ॥

संतापहारिणि माँ ! चौदहों भुवनोंके विस्तारका आधारभूत यह ब्रह्माण्ड जिसकी तरङ्गोंसे सब ओर घिरा हुआ तेंदूके पेड़के समान बीचमें लुढ़क रहा है, शंकर-जीके विस्तृत जटाजूटसे वेष्टित तुम्हारे जलका वह समूह हमारे संतापको दूर करे ॥

(२८)

त्रपन्ते तीर्थानि त्वरितमिह यस्योद्धृतिविधौ
करं कर्णे कुर्वन्त्यपि किल कपालिप्रभृतयः ।
इमं तं मामम्ब त्वमियमनुकम्पार्द्रहृदये
पुनाना सर्वेषामघमथनदर्पं दलयसि ॥

दयार्द्रहृदये जननि ! जिसका उद्धार करनेमें यहाँके (अन्य समस्त) तीर्थ लज्जाका अनुभव करते हैं, शिव आदि देवता भी जिसके उद्धारकी चर्चा सुनकर ही कानमें उँगली

डाल लेते हैं, ऐसे मुझ पापीको शुद्ध करती हुई तुमने सभी देवताओंका पापहारीपनका अभिमान नष्ट कर दिया ॥

(२९)

श्वपाकानां व्रातैरमितविचिकित्साविचलितै-
विंमुक्तानामेकं किल सदनमेनःपरिषदाम् ।
अहो मामुद्धर्तुं जननि घटयन्त्याः परिकरं
तव श्लाघां कर्तुं कथमिव समर्थो नरपशुः ॥

मैं निश्चय ही उन पापसमूहोंका निराला निवासस्थान हूँ, जिनका चाण्डालोंने भी अनेक प्रकारकी शङ्काओंसे विचलित होकर परित्याग कर दिया है । अहा ! ऐसे घोर पापी मेरा (भी) उद्धार करनेके लिये माँ ! आपने कमर कस ली है । (ऐसी अनुपम दयामयी) आपकी प्रशंसा करनेमें मेरे-जैसा नरपशु किस प्रकार समर्थ हो सकता है ॥

(३०)

न कोऽप्येतावन्तं खलु समयमारभ्य मिलितो
यदुद्धारादाराद् भवति जगतो विस्मयभरः ।

इतीमामीहां ते मनसि चिरकालं स्थितवती-
मयं सम्प्राप्तोऽहं सफलयितुमम्ब प्रणय नः ॥

माँ! अबतक कोई ऐसा पापी नहीं मिला, जिसका शीघ्र उद्धार होनेसे संसारके लोगोंको बड़ा भारी विस्मय होता—इस प्रकारकी कामना बहुत दिनोंसे तुम्हारे मनमें बनी हुई देखकर उसे सफल करनेके लिये आज मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ। मुझपर कृपा करें—प्रसन्न हों ॥

(२१)

श्ववृत्तिव्यासङ्गो नियतमथ मिथ्याप्रलपनं
कुतर्केष्वभ्यासः सततपरपैशुन्यमननम् ।
अपि श्रावं श्रावं मम तु पुनरेवं गुणगणा-
नृते त्वत्को नाम क्षणमपि निरीक्षेत वदनम् ॥

मैया! दासवृत्तिसे (जिसे शास्त्रोंमें निन्दापूर्वक कुत्तोंकी जीविका कहा गया है) प्रेम होना, (सदा) झूठ बोलना, कुतर्क करनेकी बान और सदा दूसरोंकी शठताका चिन्तन करना—इस तरहके मेरे गुणगणोंको

सुन-सुनकर तुम्हारे सिवा कौन मेरा एक क्षण भी मुँह देखेगा ॥

(३२)

विशालाभ्यामाभ्यां किमिह नयनाभ्यां खलु फलं
न याभ्यामालीढा परमरमणीया तव तनुः ।
अयं हि न्यक्कारो जननि मनुजस्य श्रवणयो-
र्ययोर्नान्तर्यातस्तव लहरिलीलाकलकलः ॥

माँ ! इन बड़े-बड़े दोनों नेत्रोंसे सचमुच क्या लाभ है, जिनसे तुम्हारे मनोहर जलमय शरीरका दर्शन नहीं किया और यह मनुष्यके उन कानोंको भी धिक्कार है, जिनके भीतर तुम्हारी तरङ्गोंका कल-कल शब्द नहीं पहुँचा ॥

(३३)

विमानैः स्वच्छन्दं सुरपुरमयन्ते सुकृतिनः
पतन्ति द्राक् पापा जननि नरकान्तः परवशाः ।
विभागोऽयं तस्मिन्नशुभमयमूर्तौ जनपदे
न यत्र त्वं लीलादलितमनुजाशेषकलुषा ॥

माँ ! पुण्यात्मा जन स्वेच्छासे विमानोंके द्वारा स्वर्गको जाते हैं और पापी परवश हो शीघ्र ही नरकोंमें जा गिरते हैं—ये दो विभेद उसी अशुभमय देशमें दृष्टिगोचर होते हैं, जहाँ प्राणियोंके समस्त पापोंका अनायास दलन करनेवाली तुम नहीं हो ॥

(३४)

अपि घ्नन्तो विप्रानविरतमुशन्तो गुरुसतीः
पिबन्तो मैरेयं पुनरपहरन्तश्च कनकम् ।
विहाय त्वय्यन्ते तनुमतनुदानाध्वरजुषा-
मुपर्यम्ब क्रीडन्त्यखिलसुरसम्भावितपदाः ॥

माता ! जो ब्राह्मणोंकी हत्या करते हैं, सदा गुरुओंकी सती-साध्वी पत्नीपर मन चलाते हैं, मद्यपान करते हैं तथा सुवर्णकी चोरी करते हैं—ऐसे महापातकी व्यक्ति भी अन्तसमय तुम्हारे तटपर अपना शरीर छोड़कर बड़े-बड़े दान तथा यज्ञ करनेवालोंसे भी ऊपर (स्वर्गलोकमें) विहार करते हैं और वहाँ समस्त देवता उनके चरणोंकी सेवा करते रहते हैं (धन्य है तुम्हारी महिमा !) ॥

(३५)

अलभ्यं सौरभ्यं हरति सततं यः सुमनसां
क्षणादेव प्राणानपि विरहशस्त्रक्षतभृताम् ।
त्वदीयानां लीलाचलितलहरीणां व्यतिकरात्
पुनीते सोऽपि द्रागहह पवमानस्त्रिभुवनम् ॥

माँ ! जो सदा पुष्पोंकी दुर्लभ सुगन्धका तथा वियोग-रूपी शस्त्रसे क्षत-विक्षत अङ्गोंवाले विरहीजनोंके प्राणोंका एक ही क्षणमें अपहरण कर लेती है, वह वायु भी तुम्हारी लहराती हुई तरङ्गोंके सम्पर्कसे शीघ्र ही तीनों लोकोंको पवित्र कर देती है (अहो ! धन्य है तुम्हारा प्रभाव !) ॥

(३६)

कियन्तः सन्त्येके नियतमिहलोकार्थघटकाः
परे पूतात्मानः कति च परलोकप्रणयिनः ।
सुखं शेते मातस्तव खलु कृपातः पुनरयं
जगन्नाथः शश्वत्त्वयि विहितलोकद्वयभरः ॥

माँ ! कितने लोग तो सदा इस लोकके पदार्थों (धन,

मान, प्रतिष्ठा आदि) की सिद्धिमें लगे रहते हैं और दूसरे निर्मल अन्तःकरणवाले सज्जन परलोक (स्वर्ग) के प्रेमी होते हैं अर्थात् स्वर्ग-प्राप्तिके साधनमें ही तत्पर रहते हैं। परंतु यह जगन्नाथ तो अपने दोनों लोकोंका भार तुमपर छोड़कर तुम्हारी कृपाके भरोसे (निश्चिन्त होकर) सदा सुखपूर्वक सोता है (अब तुम जानो) ॥

(३७)

भवत्या हि व्रात्याधमपतितपाखण्डपरिषत्-
परित्राणस्नेहः श्लथयितुमशक्यः खलु यथा।
ममाप्येवं प्रेमा दुरितनिवहेष्वम्ब जगति
स्वभावोऽयं सर्वैरपि खलु यतो दुष्परिहरः॥

माँ! जैसे तुम (अपने स्वभावसे लाचार होकर) अधम संस्कार-विहीन, पतित एवं पाखण्डियोंके समाजसे स्नेह नहीं छोड़ सकतीं; (क्योंकि पापियोंसे स्नेह करना—उनका उद्धार करना तुम्हारा स्वभाव है),उसी प्रकार मुझे संसारमें पापोंसे स्वाभाविक प्रेम है (उन्हें मैं कैसे छोड़ सकता हूँ) क्योंकि स्वभावको छोड़ना सबके लिये बड़ा ही कठिन कार्य है ॥

(३८)

प्रदोषान्तर्नृत्यत्पुरमथनलीलोद्धृतजटा
तटाभोगप्रेङ्खल्लहरिभुजसंतानविधुतिः ।
बिलक्रोडक्रीडज्जलडमरुडंकारसुभग-
स्तिरोधत्तां तापं त्रिदशतटिनीताण्डवविधिः ॥

प्रदोषकालमें* नाचते हुए त्रिपुरारिकी जटाएँ लीलासे खड़ी हो जाती हैं। उस समय उनके प्रान्तभागमें खेलती हुई लहरोंके रूपमें अपनी भुजाओंको फैलाती एवं चालित करती हुई गङ्गाजी भी मानो नाचने लगती हैं। (इतना ही नहीं,) उनका वही जल जब शिवजीके जटाजूटके किसी छेदमें प्रवेश करके लहराने लगता है, उस समय जो शब्द उससे निकलता है, वह मानो डमरूकी ध्वनि होती है, जिससे उनका वह नृत्य और भी भला लगता है। भगवती गङ्गाका वह ताण्डव नृत्य हमारे त्रिविध तापका शमन करे॥

*सूर्यास्तके अनन्तर छः घड़ीका काल प्रदोष कहलाता है—
त्रिमुहूर्तं प्रदोषः स्याद्भानावस्तं गते सति। (हेमाद्रि)

(३९)

सदैव त्वय्येवार्पितकुशलचिन्ताभरमिमं
यदि त्वं मामम्ब त्यजसि समयेऽस्मिन् सुविषमे।
तदा विश्वासोऽयं त्रिभुवनतलादस्तमयते
निराधारा चेयं भवति खलु निर्व्याजकरुणा॥

मैया! मैंने सदासे ही अपने कल्याणकी चिन्ताका सम्पूर्ण भार तुमपर ही छोड़ रखा है। ऐसी दशामें (मृत्युके) इस विकट समयमें यदि तुम मुझे त्याग दोगी तो तीनों लोकोंसे इस बातका विश्वास उठ जायगा कि तुमपर भरोसा करनेवालोंका तुम निश्चय ही उद्धार कर देती हो और यह अहैतुक दया भी निराधार हो जायगी (फिर यह कहाँ रहेगी)॥

(४०)

कपर्दादुल्लस्य प्रणयमिलदर्धाङ्गयुवतेः
पुरारेः प्रेङ्खन्त्यो मृदुलतरसीमन्तसरणौ।
भवान्या सापत्न्यस्फुरितनयनं कोमलरुचा
करेणोत्क्षिप्तास्ते जननि विजयन्तां लहरयः॥

अलौकिक प्रेमके कारण पार्वतीजीका आधा (बायाँ) अङ्ग शिवजीके आधे (दाहिने) अङ्गसे जुड़ा रहता है। उन्हीं अर्धनारीनटेश्वर त्रिपुरारिके मस्तकके दाहिनी ओर स्थित जटा-जूटसे उछलकर उन्हींके बायीं ओर स्थित अत्यन्त कोमल सुसज्जित सीमन्त (सिरके केशोंकी माँग) में जब कभी तुम मौजमें आकर हिलोरें लेने लगती हो, तब उन्हींकी वामाङ्गरूपी गौरी सौतियाडाहसे उन तरङ्गोंको अपने कोमल हाथसे हटा देती हैं और उनके नेत्र क्रोधके कारण फड़क उठते हैं। मैया! तुम्हारी उन तरङ्गोंकी जय हो॥

(४१)

प्रपद्यन्ते लोकाः कति न भवतीमत्रभवती-
मुपाधिस्तत्रायं स्फुरति यदभीष्टं वितरसि।
शपे तुभ्यं मातर्मम तु पुनरात्मा सुरधुनि
स्वभावादेव त्वय्यमितमनुरागं विधृतवान्॥

परमपूजनीया गङ्गे! बहुत लोग जो तुम्हारी शरणमें आते हैं, उसमें हेतु यह होता है कि तुम उनके (सभी) मनोरथों-

को पूर्ण कर देती हो। परंतु माँ! मैं तुम्हारी शपथपूर्वक कहता हूँ कि मेरी आत्माने तो (बिना किसी स्वार्थके) स्वभावसे ही तुमसे अपरिमित प्रेम किया है॥

(४२)

ललाटे या लोकैरिह खलु सलीलं तिलकिता
तमो हन्तुं धत्ते तरुणतरमार्तण्डतुलनाम्।
विलुम्पन्ती सद्यो विधिलिखितदुर्वर्णसरणिं
त्वदीया सा मृत्स्ना मम हरतु कृत्स्नामपि शुचम्॥

माँ! जो ललाटपर अनायास तिलकरूपमें धारण करनेसे मनुष्योंके अज्ञानरूप अन्धकारको नष्ट करनेके लिये निश्चय ही मध्याह्नकालीन प्रचण्ड सूर्यके समान बन जाती है और विधाताके द्वारा लिखे हुए अशुभ लेख (दौर्भाग्य) को भी तत्काल मिटा देती है, वह तुम्हारी मृत्तिका मेरे सभी शोकोंको दूर करे॥

(४३)

नरान् मूढांस्तत्तज्जनपदसमासक्तमनसो
हसन्तः सोल्लासं विकचकुसुमव्रातमिषतः।

पुनानाः सौरभ्यैः सततमलिनो नित्यमलिनान्
सखायो नः सन्तु त्रिदशतटिनीतीरतरवः ॥

अपने विकसित पुष्प-समूहोंके व्याजसे अपने-अपने जनपद (जिले) आदिमें आसक्त मूढ़ मनुष्योंका उल्लास-पूर्वक उपहास करनेवाले तथा अपनी राशि-राशि सुगन्धसे नित्य मलिन (काले) भ्रमरोंको पवित्र करते रहनेवाले गङ्गा-तटवर्ती वृक्षसमूह हमारे मित्र (सहवासी) हों (उन्हींके नीचे हम निवास करें) ॥

(४३)

यजन्त्येके देवान् कठिनतरसेवांस्तदपरे
वितानव्यासक्ता यमनियमरक्ताः कतिपये ।
अहं तु त्वन्नामस्मरणभृतकामस्त्रिपथगे
जगज्जालं जाने जननि तृणजालेन सदृशम् ॥

कुछ लोग देवताओंकी आराधना करते हैं, जिनकी सेवा बड़ी ही श्रमसाध्य है (विस्तृत विधि-विधानकी अपेक्षा रखती है), उनसे भिन्न लोग यज्ञ-यागादिमें अनुरक्त रहते हैं और कुछ लोग यम-नियमादि योगसाधनोंसे प्रेम

करते हैं । इधर मैं तो हे त्रिपथगामिनी ! तुम्हारे नामस्मरणसे ही पूर्णकाम हुआ इस जगत्-प्रपञ्चको तृणसमूहकी भाँति (तुच्छ) समझता हूँ (इससे भयभीत नहीं होता) ॥

(४५)

अविश्रान्तं जन्मावधि सुकृतकर्मार्जनकृतां
सतां श्रेयः कर्तुं कति न कृतिनः सन्ति विबुधाः ।
निरस्तालम्बानामकृतसुकृतानां तु भवतीं
विनामुष्मिँल्लोके न परमवलोके हितकरम् ॥

माँ ! जीवनभर लगातार पुण्योंके संचयमें लगे सत्पुरुषोंका कल्याण करनेका (झूठा) श्रेय लेनेवाले कितने देवता नहीं हैं ? अर्थात् सभी उनकी भलाई चाहते हैं । परंतु जिन्होंने कभी कोई सत्कर्म नहीं किया है तथा जिन्हें कोई दूसरा अवलम्ब (सहायक) नहीं है, ऐसे (असहाय) व्यक्तियोंका कल्याण करनेवाला तुम्हारे सिवा कोई दूसरा इस लोकमें मैं नहीं देखता ॥

(४६)

पयः पीत्वा मातस्तव सपदि यातः सहचरै-
विंमूढैः संरन्तुं क्वचिदपि न विश्रान्तिमगमम् ।
इदानीमुत्सङ्गे मृदुपवनसंचारशिशिरे
चिरादुन्निद्रं मां सदयहृदये स्वापय चिरम् ॥

माँ ! (बचपनमें) स्तनोंके दूधके समान तुम्हारा जल पीकर अविवेकी सङ्गियोंके साथ क्रीड़ा करने (विषय-सुख लूटने) मैं जल्दी ही बाहर चला गया (तुम्हारे तटपर स्थिर होकर न रह सका), फिर भी कहीं विश्राम (शान्ति) नहीं पा सका । माँ ! बहुत दिनोंसे मैं अशान्त होकर भटकता रहा हूँ—कहीं सुखकी नींद नहीं सोया । अतः हे दयार्द्रहृदये ! अब तुम मन्द-मन्द वायुके संचारसे शीतल अपनी (जलमयी) गोदमें मुझे सदाके लिये सुला लो ॥

(४७)

बधान द्रागेव द्रढिमरमणीयं परिकरं
किरीटे बालेन्दुं नियमय पुनः पन्नगगणैः ।

न कुर्यास्त्वं हेलामितरजनसाधारणधिया
जगन्नाथस्यायं सुरधुनि समुद्धारसमयः ॥

गङ्गे ! शीघ्र अपने दृढ़ एवं मनोहर फेटे (कटि) को बाँध लो, किरीटमें सर्पों (की रस्सी) से बालचन्द्रमाको जकड़कर रख लो (कहीं वह बालक होनेके कारण झटका लगनेसे नीचे न गिर पड़े); क्योंकि यह जगन्नाथके उद्धारका समय है (जो अत्यन्त श्रमसाध्य है)। माँ ! मुझे साधारण मनुष्य समझकर (खींचनेमें) असावधानी मत कर देना, (असावधानी करनेसे यह हाथसे छूट जायगा, इसका उद्धार नहीं हो सकेगा) ॥

(४८)

शरच्चन्द्रश्वेतां शशियुतकलश्वेतालमुकुटां
करैः कुम्भाम्भोजे वरभयनिरासौ विदधतीम् ।
सुधाधाराकाराभरणवसनां शुभ्रमकर-
स्थितां त्वां ये ध्यायन्त्युदयति न तेषां परिभवः ॥

माँ ! शरत्कालीन चन्द्रमाके समान उज्ज्वल, अर्धचन्द्ररूप श्वेत आभूषणसे विभूषित मुकुटवाले सुधाकी

धाराके समान श्वेत शरीर, आभूषण तथा वस्त्रोंसे युक्त, चार हाथोंमें कलश (घड़ा), कमल तथा वर एवं अभयमुद्राएँ धारण किये हुए, सफेद मगरपर विराजमान तुम्हारे इस दिव्य रूपका जो ध्यान करते हैं, उन्हें किसी भी प्रकार-का पराभव नहीं होता (नीचा नहीं देखना पड़ता) ॥

(४९)

दरस्मितसमुल्लसद्वदनकान्तिपूरामृतै-
भवज्वलनभर्जितानिशमूर्जयन्ती नरान् ।
चिदेकमयचन्द्रिकाचयचमत्कृतिं तन्वती
तनोतु मम शं तनोः सपदि शंतनोरङ्गना ॥

जन्म मरणरूप अग्निकी ज्वालासे संतप्त प्राणियोंको सदा अपनी मन्द मुसकानसे शोभायमान मुखचन्द्रके कान्ति-समूहरूप अमृत-प्रवाहके द्वारा पुष्ट करती हुई, चित्स्वरूप चन्द्रिकाके समूहोंद्वारा चमत्कारका विस्तार करनेवाली कुरुराज शंतनुकी प्राणवल्लभा गङ्गा मेरे शरीरका कल्याण करें ॥

(५०)

मन्त्रैर्मीलितमौषधैर्मुकुलितं त्रस्तं सुराणां गणैः
स्रस्तं सान्द्रसुधारसैर्विदलितं गारुत्मतैर्ग्रावभिः ।
वीचिक्षालितकालियाहितपदे स्वर्लोककल्लोलिनि
त्वं तापं तिरयाधुना मम भवव्यालावलीढात्मनः ॥

अपनी तरङ्गोंसे कालिय सर्पके शत्रु भगवान् विष्णु-के चरणोंको पखारनेवाली देवनदी गङ्गे ! मैं जन्म-मृत्युरूप विकराल सर्पके द्वारा इस बुरी तरहसे निगल लिया गया हूँ कि मेरे लिये मन्त्रोंकी शक्ति भी कुण्ठित हो गयी है, औषधोंकी सामर्थ्य भी नष्ट हो गयी है, देवता भी इसे देखकर भयभीत हो गये हैं, गाढ़ अमृतका रस भी विफल हो गया है, (सर्पका विष उतारनेमें समर्थ) गारुड (मरकत) मणियाँ भी चूर-चूर हो गयी हैं । अब तुम्हीं मेरे इस भवतापको दूर करो ॥

(५१)

द्यूते नागेन्द्रकृत्तिप्रमथगणफणिश्रेणिनन्दीन्दुमुख्यं
सर्वस्वं हारयित्वा स्वमथ पुरभिदि द्राक्पणीकर्तुकामे ।

साकूतं हैमवत्या मृदुलहसितया वीक्षितायास्तवाम्ब
व्यालोलोल्लासिवल्गल्लहरिनटघटीताण्डवं नः पुनातु॥

माँ ! (पार्वतीजीके साथ) चौपड़ खेलते समय व्याघ्रचर्म, भूतगण, सर्पसमूह, वृषभराज नन्दी, चन्द्रमा आदिके रूपमें अपनी सारी सम्पत्तिको हारकर त्रिपुरारि शंकरने जब तुम्हें दावपर रखना चाहा, तब हिमगिरिनन्दिनी पार्वती (से न रहा गया, वे) मृदुल हँसी हँसती हुई साभिप्राय दृष्टिसे तुम्हारी ओर ताकने लगीं। मैया ! उस समय (रोषके कारण) ऊपरको उछलती तथा बहती हुई तुम्हारी चञ्चल तरङ्गरूप नटोंका मस्तकपर घड़ा लेकर नाचना हमें पवित्र करे ॥

(५२)

विभूषितानङ्गरिपूत्तमाङ्गा
सद्यःकृतानेकजनार्तिभङ्गा ।
मनोहरोत्तुङ्गचलत्तरङ्गा
गङ्गा ममाङ्गान्यमलीकरोतु ॥

कामशत्रु शिवके मस्तकको सुशोभित करनेवाली,

साकूतं हैमवत्या मृदुलहसितया वीक्षितायास्तवाम्ब
व्यालोलोल्लासिवल्गल्लहरिनटघटीताण्डवं नः पुनातु॥

माँ ! (पार्वतीजीके साथ) चौपड़ खेलते समय व्याघ्रचर्म, भूतगण, सर्पसमूह, वृषभराज नन्दी, चन्द्रमा आदिके रूपमें अपनी सारी सम्पत्तिको हारकर त्रिपुरारि शंकरने जब तुम्हें दावपर रखना चाहा, तब हिमगिरिनन्दिनी पार्वती (से न रहा गया, वे) मृदुल हँसी हँसती हुई साभिप्राय दृष्टिसे तुम्हारी ओर ताकने लगीं । मैया ! उस समय (रोषके कारण) ऊपरको उछलती तथा बहती हुई तुम्हारी चञ्चल तरङ्गरूप नटोंका मस्तकपर घड़ा लेकर नाचना हमें पवित्र करे ॥

(५२)

विभूषितानङ्गरिपूत्तमाङ्गा
सद्यःकृतानेकजनार्तिभङ्गा ।
मनोहरोत्तुङ्गचलत्तरङ्गा
गङ्गा ममाङ्गान्यमलीकरोतु ॥

कामशत्रु शिवके मस्तकको सुशोभित करनेवाली,